ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. NO.- 203-207**

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.-I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

भर्तृहरि के शतकत्रय में प्रतिपादित धार्मिक अवधारणा

डॉ0 कृष्ण चन्द्र चौरसिया

एसो0 प्रो0– संस्कृत विभाग, श्री भगवान महावीर पी0जी0 कालेज, पावानगर –फाजिलनगर, कुशीनगर (उ.प्र.), भारत

Received- 01.03.2022, Revised- 06.03.2022, Accepted - 09.03.2022 E-mail: krishnachandra.chaurasia@gmail.com

सारांशः ***– धर्म का मानव जीवन में इतना अधिक महत्त्व है कि हम बिना 'धर्म' शब्द का वास्तविक अभिप्राय समझे इसका प्रयोग करते रहते हैं। प्रायः हम धार्मिक अनुभूतियों, धार्मिक क्रियाकलापों, धार्मिक परम्पराओं, धार्मिक रीति–रिवाजों और धार्मिक–विश्वासों आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं, परन्तु जितना अधिक धर्म शब्द का प्रयोग होता है, उतना ही अधिक कठिन इसकी परिभाषा करना है। इसी प्रकार यह सुनिश्चित करना अत्यन्त दुष्कर है कि कौन सा तत्त्व हमारी अनुभूतियों व विश्वासों को धार्मिक बनाता है? यदि कोई अनुभूति अत्यधिक तीव्र है, गहन है या दृढ़तर है तो क्या उसे धार्मिक कहा जा सकता है? यदि कोई अनुभूति नैतिक दृष्टि से अति मूल्यवान है तो क्या उसे धार्मिक कहा जा सकता है? यदि तीव्र, दृढतर या गहन अनुभूति और नैतिक दृष्टि से मूल्यवान अनुभूति धार्मिक कही जा सकती है तब तो 'देशभक्ति' को धर्म माना जा सकता है। इसी प्रकार केवल क्या पारलौकिक, अतीन्द्रिय और आध्यात्मिक सत्ता में विश्वास धर्म है? परन्तु पारलौकिक एवं आध्यात्मिक या दैवीय सत्ता में विश्वास ही धर्म नहीं है। क्योंकि कुछ ऐसे भी स्थापित धर्म हैं जो ईश्वर या किसी दैवीय–सत्ता के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते ।***

कुंजीभूत शब्द– धार्मिक अनुभुतियों, धार्मिक क्रियाकलापों, धार्मिक परम्पराओं, पारलौकिक, अतीन्द्रिय, अतिमूल्यवान।

धर्म मनुष्य की एक मनोदशा या आन्तरिक अभिवृत्ति है जो मनुष्य के सर्वांगीण जीवन को प्रभावित करता है। एक धर्मचारी जिस धर्म में आस्था रखता है, उसी के अनुसार जीवनयापन करता है। धर्म में 'आत्मग्रसन' या प्रतिबद्धता की अभिवृत्ति पाई जाती है। धर्मचारी या धार्मिक व्यक्ति जिस धर्म में आस्था रखता है उसके प्रति अपनी प्रतिबद्धता को प्रकट करता है तथा वह धर्म के प्रति उदासीनता या तटस्थता का भाव नहीं रखता। एक धार्मिक व्यक्ति भावनात्मक रूप से अपने धर्म से सम्बद्ध रहता है और अपने धर्म की उपेक्षा, आलोचना या निरादर सहन नहीं कर पाता है। एक सच्चा धर्मचारी या धर्मपरायण व्यक्ति धर्म के विरुद्ध कोई आचरण नहीं करता है। इस प्रकार मनुष्य भावनात्मक और क्रियात्मक दोनों ही रूपों से धर्म से सम्बद्ध रहता है। धर्म में धर्मचारी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व सम्पुटित रहता है। एक धर्मपरायण व्यक्ति बिना किसी संदेह या शंका के यह स्वीकार करता है कि उसके आराध्य की वस्तुगत सत्ता है तथा वही समस्त मूल्यों, आदर्शों, सद्गुणों, असीम शक्ति और ज्ञान का स्रोत है। उसके समस्त क्रिया–कलापों में, उसकी समस्त गतिविधियों में और उसके समस्त व्यावहारिक जीवन में उसकी आस्था, प्रतिबद्धता व 'आत्मग्रसन की प्रवृत्ति' देखी जा सकती है। कभी–कभी धर्मचारी की आस्था का बौद्धिक या तार्किक या वैज्ञानिक आधार नहीं होता परन्तु इससे धर्मचारी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वह अपने धर्मग्रन्थ को ही पावनतम ज्ञान के स्रोत के रूप में स्वीकार करता है और उसकी मान्यताओं को प्रमाण का विषय नहीं मानता। इसीलिए धर्म–दार्शनिकों ने धार्मिक आस्था को निर्बौद्धिक कहा है।

इहलौकिक जगत् में वैदिक एवं पौराणिक युग से लेकर अद्यपर्यन्त भक्तकवियों अथवा राष्ट्रकवियों ने जिन मानवीय भावनाओं को उपपादित किया है, वे भावनाएँ मानव–मूल्य के नाम से जानते हैं। यही मानवीय भावनाए पुरुषार्थ की श्रद्धा एवं विश्वासमयी विविधता को अभिव्यक्त करती है। 'कमनीयं काव्यम्' इस व्युत्पति के अनुसार जो कमनीय हो अथवा सुन्दर हो, वह काव्य कहलाता है। यही तथ्य आचार्य मम्मट ने 'शब्दार्थयोर्गुणभावेन रसांगभूतव्यापार प्रवणतया विलक्षणं यत्काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म, तत कान्तेव सरसतापादनेनाभिमुखी.त्य रामादिवदर्तितव्यं न द्य रावणादिवरित्युपदेशं च यथायोगं कवेः सहृदयस्य च करोतीति सर्वथा तत्र यतनीनयम्– काव्य प्रकाश –1/2 कारिकांश द्वारा समर्थित किया है। इस प्रकार भर्तृहरि ने भी शतकत्रय में स्वीकार किया है –

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः । तृण न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम।। येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः। ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।। –नीतिशतक, 12–13

यथाथर्तया 'कवि' क्रान्तद्रष्टा होता है– कवयति सर्वजानाति सर्ववर्णयतीति कविः। कवि को वेदों में सर्वद्रष्टा परमेश्वर भी कहा गया है तथा 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः' द्वारा उसकी सर्वत्र प्रशंसा की गयी है। जिस प्रकार ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, क्रान्तद्रष्टा, सर्वद्रष्टा इत्यादि गुणों से सम्पन्न है, उसी प्रकार इहलौकिक जगत् का 'कवि' भी सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, क्रान्तद्रष्टा, सर्वद्रष्टा इत्यादि गुणो से परिपूर्ण होता है। जिसके कारण उसे कहा गया है–जहाँ न पहुचे रवि। वहाँ पहुचै कवि।।
यह वेद ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, पुराण, स्मृतिशास्त्र, रामायण, महाभारत इत्यादि शास्त्रों में प्रतिपादित गुणधर्मों को अपना उपजीव काव्य बनाता है। योगिराज भर्तृहरि ने भी शास्त्रसम्मत वचनों को उपबृहण करके अनुभवजन्य शतककाव्य अर्थात्

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.-I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

नीतिशतक, शृंगारशतक तथा वैराग्यशतक की रचना किया। यह शतककाव्य शास्त्रसम्मत वचनों की भांति इहलौकिक अभ्युदय सहित पारलौकिक अभ्युदय की ओर उन्मुख करता है। शतककाव्यकार भर्तृहरि के शतककाव्य में भारतीयदर्शन की बिम्ब प्रतिच्छायित होती है क्योंकि यह भारतीय दर्शन की भाँति दुःख से निवृत्ति एवं सुख की प्रवृत्ति की ओर अभिमुख करती है, जो मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। योगिराज भर्तृहरि बौद्ध दर्शन की भांति जगत् को दुःखमय बताया है–

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम् माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रुपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये .तान्ताद्भयम् सर्व वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।।

भर्तृहरि के अनुसार मानव का अन्तिम लक्ष्य है– सभी दुःखों से छुटकारा पाना। आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक कष्टों को दूर करना–

आशा नाम नदी मनोरथजलातृष्णा तरंगाकुला रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्य्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुंगचिन्तातटी तस्याः पारगताविशुद्धमनसो नन्दति योगीष्वराः।।

शतकत्रय प्रणेता भर्तृहरि का मुक्तककाव्यपरम्परा में श्रेष्ठ स्थान है। भर्तृहरि का शतककाव्य (नीतिशतक, श्रृंगारशतक तथा वैराग्यशतक) व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए हृदयग्राही एवं प्रेरणास्रोत है। इन्होंने शतककाव्य में जहाँ एक और सत्यम शिवम् सुन्दरम का समावेश कर 'ब्रह्मं सत्यं जगन्मिथ्या' को चरितार्थ किया है तो वही दूसरी ओर वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, पुराण, स्मृति रामायण, महाभारत इत्यादि ग्रन्थों का संग्राहक होने के कारण शतककाव्य एक रहस्यमय ग्रन्थ बन पड़ा है। उसमें मानव जीवन के औदात्य एवं बाह्य जगत् के सम्पर्क से मानव मन में उदबुद्ध करने वाले विविध मनोवेगों की भावात्मक, कलात्मक एवं दर्शनात्मक अभिव्यक्ति प्रतिच्छायित है। मैं कौन हूँ? मेरा आदि और अन्त क्या है? यह जीवन क्या है? जीवन का उद्गम और विलय का रहस्य क्या है? भय, चिन्ता, रोग, शोक और मृत्यु क्यों होते है? इसका प्रारम्भ और अन्त कैसे होता है? इसकी संरचना क्यों और कैसे हुई? इसके पृष्ठ में कौन सी आधारभूत सत्ता है? मेरा इहलौकिक जगत से तथा इसकी धारक–सत्ता से क्या सम्बन्ध है? मानव जीवन का उद्देश्य क्या है? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर भर्तृहरि का शतककाव्य प्रतिपादित करता है। यह अनेक प्रकार के मानवीय जिज्ञासाओं का समाधान ज्ञान करता है–

आक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम्।।

योगिराज भर्तृहरि का मन्तव्य है कि दर्शन, चिन्तन, मनन, मन्थन, गवेशणा इत्यादि की अन्तर्हीन यात्रा की परिणति अपने भीतर अनुभूति ही होती है, फिर भी उनका अपना महत्त्व होता है। तत्त्वचिन्तन मनुष्य को अन्तर्मुखी बना देता है और मन की अन्तर्यात्रा प्रारम्भ हो जाता है। मनुष्य को अपने भीतर ही प्राप्तव्य एवं गन्तव्य की प्राप्ति हो जाती है। सम्प्रति उसके जीवन में ऐसी .तार्थता आ जाती है कि वह सुख–दुःख, लाभ–हानि, यश–अपयश तथा जीवन–मरण के द्वन्दों को पार करके आत्ममग्न हो जाता है–

यदासीदऽज्ञानं स्मरतिमिरसंचारजनितं तदासर्वं नारीमयमिदमशेषं जगद्भूत्।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकांजनदशां समीभूता त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते।।

यथार्थतया भर्तृहरि का शतककाव्य मानव–जीवन के पूर्णतया की द्योतक है। मानव–जीवन के स्थूलतया तीन भाग है– बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था। भर्तृहरि ने मानव–जीवन के बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था के सोपानों के लिए क्रमशः नीतिशतक, श्रृंगारषतक तथा वैराग्यशतक की रचना किया। इसमें मानव–जीवन से सम्बन्धित पक्षों को लेकर मानव–मूल्यों को प्रतिपादित किया है। भर्तृहरि के अनुसार पूर्ण मानव बनने के लिए शतककाव्य में प्रतिपादित मानव–मूल्यों को ग्रहण करना अत्यावश्यक है। शतककार भर्तृहरि ने नीतिशतकम् के मुर्खनिंदाप्रकरण, विद्वज्जनप्रशंसाप्रकरण, मानशौर्यप्रशंसाप्रकरण, द्रव्यमहिमाप्रकरण, दुर्जनप्रकरण, सुज्जनप्रकरणपरोपकार, पद्धतिप्रकरण, धैर्यप्रकरण, दैवप्रकरण, कर्मप्रकरण; श्रृंगारशतक के श्रृंगारप्रकरण, ऋतुप्रकरण, कामिनीगर्हणाप्रकरण, वेश्यानिन्दाप्रकरण तथा वैराग्यशतक के तृष्णागर्हणाप्रकरण, विषयपरित्याग प्रकरण, याचकनिन्दाप्रकरण, भोग पर क्षणभंगुरताप्रकरण, कालमहिमाप्रकरण, यति–नृपतिप्रकरण, मनोनियमनप्रकरण, नित्यानित्यविचारचर्चाप्रकरण, अन्तस्तपोरुरुपशिवार्चनप्रकरण, साधकजीवनचर्याप्रकरण के माध्यम से प्रमुख मानव–मूल्यों को प्रतिपादित किया है, जो मानव–जीवन के लिए सर्वश्रेष्ठ एवं उपयोगी है।

धार्मिक अवधारणा– धर्म मानव जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग हैं यह भूत, भविष्य एवं वर्तमान सभी कालखण्डों में व्याप्त रहता है। यह आत्मा–ईश्वर, जीव–ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष इत्यादि के मध्य अनन्त सम्बन्ध स्वरूप है। अतः प्र.ति, ईष्वर, व्यक्ति एवं समाज के मध्य सामंजस्य स्थापित करने वाले शाश्वत सिद्धान्तों का समुच्चय ही धर्म है। इन्हीं शाश्वत् सिद्धान्तों से सृष्टि का अनन्वतर संचालन होता है 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति', 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म', 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यादि महावाक्यों से भी यही विचारधारा प्रतिध्वनित होती है। अतः अनन्त, सर्वशक्तिमान् एवं सर्वव्यापी ईश्वर ही जीवमात्र का गूढ़ ध्येय एवं लक्ष्य है। इस प्रकार आध्यात्मिकता के इस अभिप्राय को हृदयगम कर सभी को मार्गदर्शक ज्योति तथा समन्वयकारी विधान का अन्वेषण धर्म में ही करना चाहिए। वेद, शास्त्र सन्त–महात्माओं के वचनों एवं आचरणों से भी यही सिद्ध होता है कि समस्त जगत धर्म पर ही प्रतिष्ठित है। जैसा कि महर्षि वाल्मीकि ने इस जगत् को 'धर्मसार' कहा है।' अतः धर्म से ही मानव जीवन की सार्थकता है।

ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- I, Issues-23, YEAR- Jan.-March-2022

धर्म का स्वरूप– धर्म शब्द का सम्बन्ध कर्त्तव्य, जाति, सम्प्रदाय आदि के प्रचलित आचार का पालन, अध्यादेश, नैतिकगुण, सत्संग, परोपकार इत्यादि से है।[2] प्राचीन ऋषियों ने धर्म की परिभाषा को अतिसरल एवं व्यावहारिक बतलाया हैं जिसके द्वारा मनुष्य उन्नति करे, कल्याण को सिद्ध करें, यह धर्म है।[3] अपने लिये जो दुःखद तथा प्रतिकूल है, वैसा आचरण दूसरों के प्रति भी नहीं करना धर्म है।[4] अथर्ववेद में 'धर्म' शब्द का प्रयोग धार्मिक क्रिया करने से अर्जित सांसारिक गुण के अर्थ में हुआ है। छान्दोग्योपनिषद् में धर्म के तीन स्कन्ध कहे गये हैं– प्रथम यज्ञ, अध्ययन एवं दान द्वितीय तपस्या तथा तृतीय ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए आचार्य कुल में रहना। तैत्तिरीय आरण्यक में धर्म अनिवार्य कर्त्तव्य के रूप में प्रयुक्त हुआ है। श्रीमद्भगवद्गीता में का पालन करते हुए मृत्यु को भी श्रेयस्कर कहा गया है। इस प्रकार धर्म का प्रमुख लक्ष्य आत्मा का अभ्युत्थान एवं मुक्ति है।

शतकसाहित्यशिरोमणियोगिराज भर्तृहरि ने अभ्युत्थान का तात्पर्य इहलौकिक अभ्युदय[4] तथा पारलौकिक अभ्युदय[5] दोनों को माना है। अतः भर्तृहरि ने धर्म के अन्तर्गत न केवल ईश्वरोपासना, अध्यात्म एवं नैतिक व्यवहार को रखा है, अपितु उन्होंने मनुष्य का व्यक्तिगत आचरण, दैनिक कर्त्तव्य, पारस्परिक तथा सामाजिक व्यवहार को भी धर्म से किया है।

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति– धर्म शब्द की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से हो सकती है। प्रथम व्युत्पत्ति– 'ध्रियते लोकः अनेन इति धर्मः' अर्थात् जिससे लोक को धारण किया जाय, वह धर्म है। द्वितीय व्युत्पत्ति 'धरति धारयति वा लोकम् इति धर्मः' अर्थात् जो लोक को धारण करे, वह धर्म है।[6] तृतीय ध्व्युत्पत्ति– 'ध्रियते यः स धर्मः' अर्थात् जो दूसरों से धारण किया जाय, वह धर्म है।''[7] अतः 'धर्म' पद का शाब्दिक अर्थ है– धारण करना, सहारा देना एवं पालन करना। जैसा कि महाभारतकार ने लोक में धारण करने के कारण इसको धर्म कहा है।[9] भर्तृहरि ने 'धर्म' शब्द का तात्पर्य कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया है।[10]

शतकत्रय में प्रतिपादित धार्मिक स्वरूप– भर्तृहरि के शतकत्रय के अध्ययन से विदित होता है कि धर्म एक व्यवहारिक कर्तव्य है। जिसके द्वारा व्यक्ति इहलौकिक अभ्युदय ही नहीं, अपितु पारलौकिक निःश्रेयस् को भी प्राप्त करता है। भर्तृहरि के अनुसार धार्मिक कर्त्तव्य सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक संस्था है, क्योंकि निःस्वार्थता एवं कर्त्तव्यपरायणता ही धर्म का मापदण्ड है। भर्तृहरि का शतकत्रय मानव जीवन की सम्पूर्णता का द्योतक है। अतः भर्तृहरि के शतकत्रय में प्रतिपादित धार्मिक जीवन के विभिन्न आयामों का तीन विभागों में स्पष्टीकरण किया जा रहा है।

(क). धर्म का सार्वभौमिक स्वरूप– धर्म का सार्वभामिक कर्त्तव्य से तात्पर्य धर्ममूलक नैतिक कर्त्तव्यों से है, जो किसी विशेष समूह जाति, प्रान्त, क्षेत्र विशेष, देशकाल पर्यन्त सीमित नहीं है, अपितु इसका क्षेत्र असीमित एवं व्यापक है। यह धर्म किसी एक परिवार, समूह अथवा देश का नहीं है। इसलिए यह मानवधर्म अथवा सामान्य धर्म के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इन नैतिक गुणों को महर्षि पतंजलि ने पातंजलि योगदर्शन' में सार्वभौम महाव्रत के नाम से अभिहित किया है। जिसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह सम्मिलित है।''[11] यहाँ महाव्रत का तात्पर्य–जातिदेशकाल– समयान्वच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम्' बतलाया गया है। अतः जब अहिंसादि जाति, देश, काल एवं निमित्त की सीमा से रहित होते हैं, तब वे सार्वभौमिक कहे जाते हैं। जैसाकि श्रीमदभगवद्गीता में अहिंसा, सत्य, क्रोध, त्याग, शान्ति, अपैशुन दया, मार्दव, तेज, क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह तथा अभिमानरहित दैवीय सम्पदा से युक्त पुरूष के सामान्य कर्त्तव्य प्रतिपादित किये गये है।[12] इसी प्रकार धर्म के सामान्य लक्षण मनुस्मृति में दस[13] तथा भगवतपुराण में तीस[14] बतलाये गये है।

भर्तृहरि के शतकत्रय में धर्म के सार्वभौमिक कर्त्तव्य को प्रमुखता से प्रतिपादित किया गया है। जैसा कि पूर्व उल्लिखित है कि भर्तृहरि का शतकत्रय मानव की सम्पूर्णता द्योतक है। अतः भर्तृहरि के शतकत्रय में सत्संगति,[15] विद्या में अभिरूचि,[16] लोक–निन्दा से भय, तृश्णा–त्याग,[17] दुष्ट–त्याग विपत्ति में धैर्य, उन्नति में अभिरूचि, इन्द्रिय–संयम,[18] ईष्वर–चिन्तन, धैर्यशाली, तपस्वी, इहलौकिक भोगों का परित्याग तथा पारलौकिक अभ्युदय में संलग्न[19] महात्माओं का स्वाभाविक गुण बतलाया गया है। ये सभी धर्म के सामान्य लक्षण बतलाये गये है। यही नहीं, भर्तृहरि ने शतकत्रय में उपपादित किया है कि जिसके पास न विद्या है, न तप है, न दान है, न शील है, न गुण है, न धर्म है, वे पशु स.श है।[20] अतः भर्तृहरि तत्–तत् कर्मों को करने के लिए प्रेरित करते है, जो मानव समाज का सार्वभौमकर्त्तव्य मानव मूल्य है। इन सार्वभौमिक कर्त्तव्य रूपी मानव मूल्य से व्यक्ति का इहलौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय दोनों होता है।

ख. धर्म का सामाजिक स्वरूप– भारतीय संस्.तवाङ्मय में हिन्दू संस्कृति की यह विशेषता है कि जहाँ एक ओर सर्वव्यापी मानवधर्म का निरूपण किया गया है, वहीं इस तथ्य को भी ध्यान में रखा गया है कि समय, परिस्थिति एवं स्थान के अनुसार सभी व्यक्तियों के लिए भिन्न–भिन्न कर्त्तव्यों को पूरा करना अत्यावश्यक है। इस धार्मिक कर्त्तव्य को स्वधर्म के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि यह एक विशेष व्यक्ति का अपना धर्म होता है। इसमें व्यक्ति अथवा समाज समय, परिस्थिति एवं स्थान के अनुसार पुरुषार्थचतुष्ट्य, राजधर्म, गुरुमित्रादि के नैतिक कर्त्तव्यों को रखा जाता है। भर्तृहरि के शतकत्रय में वर्णचतुष्ट्य अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, आश्रमचतुष्ट्य अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम,[21] पुरुषार्थचतुष्ट्य अर्थात् धर्मपुरुषार्थ, अर्थपुरुषार्थ, कामपुरुषार्थ एवं मोक्षपुरुषार्थ''[22] का प्रतिपादन एवं उनके कर्त्तव्यों का विश्लेषण किया गया है।[23] यही नहीं, भर्तृहरि ने राजधर्म, गुरुमित्रादि से सम्बन्धित कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकार भर्तृहरि के

शतकत्रय में संकेत किया गया है कि व्यक्ति को धर्म के सामाजिक कर्त्तव्यों का आचरण करना चाहिए।

ग. धर्म का दार्शनिक स्वरूप– भारतीय दार्शनिकों का मन्तव्य है कि जगत् त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न होता है। जिसे सुख, दुःख तथा मोह इन त्रिगुणों से अन्वित बतलाया गया है। संसार का प्रत्येक जीव स्वभावतः सुख की प्रवृति तथा दुःख की निवृत्ति चाहता हे, जो आत्मसाक्षात्कार से ही सम्भव है। अतः इहलौकिक जगत् में भौतिक दृष्टिकोण से शान्ति की सम्भावना समाप्त हो जाने पर चिन्तनशील मानव ने आत्यन्तिक एवं ऐकान्तिक शान्ति के निमित्त जिस शास्त्र में प्रवृत्ति बतलाई है, वही धर्म का दार्शनिक कर्त्तव्य है।

यद्यपि भर्तृहरि ने शतकत्रय में मार्गद्वय प्रवृत्ति एवं निवृत्ति में से किसी एक का चयन करने का निर्देश दिया है, तथापि भर्तृहरि ने बतलाया है कि यदि मानव नित्यसुख को चाहता है तो इन्द्रियों को इहलौकिक विषयों की ओर उन्मुख न होने दें।[24] अतः भर्तृहरि के अनुसार इहलौकिक सांसारिक भोग वृथा है। जैसा कि शतकत्रय में उपपादित है कि व्यक्ति विषयों को नहीं भोगता, अपितु विषय ही उन्हें भोगते हैं।[25] अतः तृष्णा मानव को जीर्ण–शीर्ण बना देती है। परन्तु वह तृष्णा स्वयं ज्यों की त्यों बनी रहती है।[26]

इस प्रकार भर्तृहरि ने इहलौकिक वैभव का परित्याग बतलाकर निवृत्ति को ही सत् के अन्वेषण का उत्तम साधन माना है। अतः आत्मसाक्षात्कार के समक्ष जगत् को हेय (तुच्छ) दृष्टि से देखा गया है।

संदर्भ संकेत सूची

1. धर्मार्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्। धर्मेण लभते सर्व धर्मसारमिदं जगत्।। वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड 9/30
2. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी कोश, पृ0सं0 489।
3. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। वैशेषिकसूत्र 1/1/1
4. परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
   स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।। नीतिशतकम् श्लोक सं. 69
5. यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंचारजनितं, तदा सर्व नारीमयमिदमशेषं जगद्भूत इदानीमस्माकं पटुतरविवेकांजनदशां, समीभूता दृश्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्ममनुते श्रृंगार शतकम्–श्लोक.सं0 101
6. कल्याण, 'हिन्दू संस्कृति अंक', पृ0सं0 369
7. कल्याण, 'हिन्दू संस्कृति अंक', पृ0सं0 369
8. वामन शिवराम् आप्टे, संस्कृत–हिन्दी कोष पृ0सं0 489
9. धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यत् स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्मः इति निश्चयः।। महाभारत, क.प.69/58
10. वांछा सज्जनसंगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता विद्यायां व्यसनं स्वयोशिति रतिर्लोकापवादाद् भयम्। भक्तिशूलिनिः शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्ति खले एते येशु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः।। नीतिशतकम् श्लोक.सं0 62
11. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। पातंजल योगसूत्र– 2/30
12. अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्। दया भूतेश्वलोलुप्त्वं मार्दवं हीरचापलम्।। तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता। भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।। भगवद्गीता– 16/2–3
13. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधे दशकं धर्मलक्षणम्।। मनुस्मृति– 6/92
14. नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे। त्रिंशल्लक्षणवान्साजन्सर्वात्मा येन तुष्यति।। भागवतपुराण–6/11/5–12
15. जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं मानोन्नति दिशति पापमपाकरोति। चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।। नीतिषतकम्– श्लोक–23
16. विद्या नाम् नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं विद्या भोगकारी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरूः ।विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं विद्या राजसु पूजिता न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ।। वैराग्यशतकम्– श्लो.सं.20
17. भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किन्चित्फलं। गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते।।वैराग्यषतकम्– श्लो.सं. 2–8
18. विस्तारितं मकरकेतनधीवरेण । ह्यहितकरणदक्षैः पंचभिर्वचितोऽसि ।। श्रृंगारषकतम्– 84–87
19. तुंग वेश्म सुताः सतामभिमताः संख्यातिगाःसंपदः कल्याणी दयिता वयश्च नवमित्यज्ञानमूढो जनः। मत्वा विश्वमनश्वरं निविशते संसारकारागृहे संश्य क्षणभङ्गुरं तदखिलं धन्यस्तु संन्यास्यति ।। वैराग्यषकतम्– श्लो. सं. 20
20. येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः। ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।। नीतिषकम्– श्लो.सं. 13
21. आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतम् तस्यार्द्धस्य परस्यचाधर्म परं बालत्ववृद्धत्वयोः। शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारितरंगचंचलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्।। वैराग्यषतकम्– श्लो.सं.49
22. न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितम्। नारीपीनपयोधरोरुयुगलं

स्वप्नेऽपि नालिंगितम् मातुः केवलमेव यौवनच्छेदे कुठारा वयम्।। वैराग्यषतकम्–श्लो.सं.45

23. नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः स्वार्थान् सम्पादयन्तो विततपृथुतरारम्भयत्नाः परार्थे । क्षन्त्यैवाक्षेपरुक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्मुखान् दूषयन्तः । सन्तः साश्चर्यचर्याजगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीया ।। नीतिषकम्–श्लो.सं. 70

24. इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एषा स्तनानाम् । इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणे ह्याहितकरणदक्षैः पंचभिर्वंचितोऽसि।। श्रृंगारषकतम– श्लो.सं. 87

25. भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः, तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः। कालो न यातो वयमेव याताः, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।। वैराग्यषकतम्– श्लो.सं. 7

26. वालिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितेनांकितं शिरः। गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते।। भ.वै.श., श्लो.सं.–8

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भर्तृहरि : नीतिशतक – पं0 गोपीनाथ, नाग प्रकाशन IIA/यू.पी. जवाहर नगर दिल्ली प्रथम संस्करण संषोधित संस्करण, 1989.
2. भर्तृहरि : श्रृंगारशतक – हरिदास वैध, हरिदास एण्ड कम्पनी मथुरा (उ0प्र0), प्रथम संस्करण–1930 का दशम संशोधित संस्करण–1985.
3. भर्तृहरि : वैराग्यशतक – वेंकटराव रायसम्, गांधी दुनियां प्रकाशन, हैदाराबाद (आ0प्र0), 1960 संस्करण।

*****